International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-10-2022, Accepted: 03-11-2022, Published: 19-11-2022
Volume 8, Issue 6, 2022, Page No. 15-17

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक समस्याएँ

डॉ. सोनम शुक्ला[1], डॉ. ज्ञानेन्द्र मणि त्रिपाठी[2]
[1] असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, मर्यादा पुरुषोत्तम पीजी कॉलेज, मऊ, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, किसान पीजी कॉलेज, बहराइच, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
"उपन्यास को वर्तमान समाज का वृहद दर्पण कह सकते हैं क्योंकि इसके अंतर्गत पाठको को समाज के विभिन्न और प्रायः सभी वर्गों के स्पष्ट चित्र मिलते हैं। ध्यातव्य है कि कथाकार श्रीलाल शुक्ल का बचपन भले ही आर्थिक विपन्नता में बीता था किन्तु शेष जीवन सरकारी सेवा के उच्च प्रशासनिक पदों पर रहने के कारण सुविधायुक्त आर्थिक–संपन्नता वाला था। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में उच्च और निम्नवर्ग दोनों के चरित्र अपनी वर्गीय विशेषताओं के साथ प्रचुर मात्रा में उपस्थित हैं। इनकी औपन्यासिक कृतियों में वर्णित कथ्यों का गहनता से अध्ययन करने के बाद हम उन आर्थिक कारणों की ओर समाज को ध्यानाकर्षित कर सकते हैं जिनके कारण विभिन्न आर्थिक समस्याएँ पैदा होती हैं"।

मूल शब्दः आर्थिक विपन्नता, आर्थिक संपन्नता, वर्गीय विशेषताएँ, आर्थिक समस्याएँ, उच्च व निम्न वर्ग

प्रस्तावना

निर्धनता के दुष्चक्र की प्रमुख कारकः सामाजिक आर्थिक विषमता

तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस बात पर अपनी सहमति दी थी कि समाज की आर्थिक प्रगति हेतु कुछ हद तक बढ़ती हुई आर्थिक विषमता वांछनीय है किन्तु नेहरू की इस आर्थिक विषमता के समर्थन की धारणा के प्रखर विरोधी डॉ. राममनोहर लोहिया थे। उन्होने इसी संदर्भ में लोकसभा में 'तीन आना बनाम तेरह आना' को प्रमुख मुद्दा बनाकर जोरदार बहस भी की थी जिसमें उन्होने कहा– "सत्तावन करोड़ आदमी तीन आने रोज के खर्च पर ज़िंदगी निर्वाह करते हैं जबकि प्रधानमंत्री के कुत्ते पर रोजाना तीन रुपए खर्च करना पड़ता है। लोहिया का इस बात से आशय था कि आर्थिक विषमता के दो ही परिणाम होते हैं– एक तो गरीबों और मजदूरों का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ पाता और दूसरा आर्थिक विकास की दर क्रमशः अवरुद्ध होती जाती है"। देश में उपलब्ध संसाधनों को जब भी अव्यवस्थित और असमान रूप से वितरित तथा उनका दोहन किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से समाज में आर्थिक विषमता की खाई दिनोदिन और अधिक चौड़ी होती जाती है; परिणामस्वरूप धनी वर्ग और अधिक धनवान तथा निर्धन वर्ग और ज्यादा गरीब होता जाता है। शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से इसी सामाजिक कोढ़–निर्धनता तथा तत्जनित प्रभावों को पाठको के समक्ष बहुत ही बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया है।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने पहले उपन्यास सूनी घाटी का सूरज में ही निर्धनता का ऐसा दुष्चक्र दिखाया है जो कथा के अंत तक समाप्त नहीं होता। अत्यधिक गरीबी तथा गाँव के जमीदार ठाकुर से कर्ज़ लेने के कारण रामदास के पिता जमीदार के घर दास बनकर जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर थे। दासता के इसी नारकीय जीवन में ही एक दिन उनकी मृत्यु हो जाती है।अपने पिता की मृत्यु के बाद रामदास को गाँव में पढ़ाई के साथ–साथ जमीदार के खेतों में काम भी करना पड़ता था।रामदास गाँव की जिस पाठशाला में पढ़ता था वहाँ एक प्रार्थना होती थी जिसके माध्यम से शुक्ल जी ने एक सजीव बिम्ब की सर्जना करते हुए उन गरीब और असहाय बच्चों की दुर्बलता को व्यक्त किया है– "निर्बल के प्राण पुकार रहे। जगदीश हरे, जगदीश हरे"। इन्हीं निर्बल प्राणों के बीच रहकर रामदास ने अपनी प्राथमिक शिक्षा पायी थी। अपनी प्राथमिक शिक्षा गाँव की पाठशाला से प्राप्त करने के बाद आगे की पढ़ाई तथा अँग्रेजी पढ़ने के लिए मुंशी जी रामदास को कानपुर भेजने की व्यवस्था कर देते हैं। इस सहायता के लिए उनकी पत्नी राजी नहीं थी इसीलिए कटाक्ष करते हुए कहती है– "सब कुकुरिया जगन्नाथ जाएगी तो पत्तल कौन चाटेगा"। मुंशी की पत्नी के ये शब्द उस यथार्थ की अभिव्यक्ति हैं जिसमें स्पष्ट है कि गाँव के गरीब बच्चों का जीवन जानवरों के समान है। उन्हें शिक्षा पाने तथा अपने जीवन स्तर को सुधारने का कोई भी मौका उच्च वर्गीय समाज नहीं देना चाहता। वह नहीं चाहता कि निम्न वर्ग के बच्चे भी पढ़–लिखकर अपने पैरो पर खड़े हो सकें। इस उपन्यास में संयोगवश रामदास को अपनी कड़ी मेहनत और लगन के कारण कुछ सहृदय लोगों की सहायता अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए समय समय पर मिलती रहती है। बचपन से ही गरीबी,शोषण और अभावों के कटु अनुभवों को ग्रहण करते हुए अपने जीवन के उतार चढ़ावों का अध्ययन करके उसने अपनी रिसर्च में लिखा– "मैं एक प्रताड़ित आत्मा के अनुभवों को अपनी शिक्षा, अपने तर्क और अपने अनुभवों के सहारे किसानों के कर्ज़ की समस्या में उतार रहा हूँ"। रामदास के पिता को अपनी ही जाति के जमीदार के यहाँ कर्ज़दार रहते हुए बाद में प्राण त्यागना पड़ा था और उसके सारे खेत उस कर्ज़ से उऋण होने के लिए रामदास को ठाकुर के नाम लिखने पड़े थे। अतः किसानों के कर्ज़ की समस्या और उसके दुष्प्रभावों को रामदास बचपन से ही जनता था। यही कारण है कि आजीवन उसके मन में इस समस्या के प्रति एक टीस और खटास बनी रही।

सूनी घाटी का सूरज तथा राग विराग उपन्यास में भी दिखाया गया है कि समाज में गरीबों के लिए किसी का प्रेम पाना भी दुर्लभ है क्योंकि इस अर्थ–संचालित समाज में किसी भी स्त्री को अपने प्रेमी या पति के रूप में सफल और प्रतिष्ठित पद वाला पुरुष ही चाहिए। इस सुविधाभोगी सोच का यह परिणाम होता है कि निर्धन वर्ग प्रेम से मिलने वाले भावनात्मक संबल से भी प्रायः महरूम रह जाता है। 'सूनी घाटी का सूरज' में सत्या से स्त्रियों की इसी मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए रामदास कहता है– "यह भी विचित्र बात है। प्रेम पर भी तुम भरपेट वालों की ही मोनोपोली रहेगी"। अर्थात समाज में लोगों ने प्रेम जैसा नैसर्गिक और सहज मानवीय सम्बन्ध भी अर्थाश्रित करके उसे कृत्रिम और

अवसरवादी बना दिया है। उपन्यास का अंत रामदास के पुनः प्राथमिक पाठशाला में हेडमास्टरी की नौकरी स्वीकार करने के साथ होता है क्योंकि धनबल या किसी ऊँची सिफ़ारिश के अभाव में उसे योग्यता होने के बावजूद भी विश्वविद्यालय में नौकरी नहीं मिलती। गरीबी का यह दुष्चक्र उसके जीवन में यूं ही बना रहता है हालांकि इसको तोड़ने की रामदास ने तमाम कोशिशें की किन्तु वे सभी व्यर्थ ही साबित हुईं। यह केवल रामदास की ही नहीं अपितु हमारे समाज में निम्न वर्ग में जीवन–यापन करने वाले सभी वंचित अभावग्रस्त लोगों की भी वास्तविक स्थिति है।

मूलभूत संसाधनो का अभाव

भारत की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण है जिनकी आजीविका कृषि पर निर्भर है। भारत में कुछ राज्यों के अलावा बाकी सभी राज्यों में खेती करने का ढंग परंपरागत ही है इसलिए यहाँ फसलों की उपज–पैदावार बहुत कम होती है। फलस्वरूप यहाँ किसानों को खेती से केवल इतना ही आर्थिक लाभ होता है जितने में वे सामान्य जीवन स्तर में रहते हुए अपना भरण–पोषण कर सकें। हमारे देश में मौसम–आधारित कृषि होती है जिसका सबसे बड़ा नुकसान यह है कि किसी वर्ष प्रतिकूल मौसम होने पर किसानों की सारी फसल–पैदावार खराब हो जाती है जिससे उनके सामने उस वर्ष जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने का भी संकट पैदा हो जाता है। श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास अज्ञातवास में गाँव के किसानों का सजीव चित्रांकन किया है जो उनके अभावग्रस्त–अभिशप्त जीवन को भी रेखांकित करता है। किसानों के हाव–भाव व रंग–रूप के बिंब प्रस्तुत करते हुए शुक्ल जी ग्रामीणों का दृश्य–चित्र उपस्थित कर देते हैं जैसे– "रामलाल–खेती, अकेलापन, वनमानुषों और प्रेतों की समकक्षता यही उसकी जिंदगी है। बनवारी–वर्तमान उसके साथ लँगड़ाकर चलता है। उसकी मूंछे उसके अतीत को उसके वर्तमान में खींचने की निरर्थक चेष्टा करती है"। ऐसे चरित्र–वर्णन से पाठकों को ग्रामीण किसानों के अभावयुक्त जीवन की समस्याएँ व उससे उत्पन्न होने वाले कष्ट खुद–ब–खुद दिखते हैं। ऐसे उपन्यासों को पढ़ने की प्रासंगिकता केवल इतनी है कि यह देश की विडम्बना को दर्शाता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के 70 सालों के बाद भी हमारे देश में ज़्यादातर किसान ऐसा ही अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।

प्रशासनिक–राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार

श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय समाज के जिस सर्वाधिक कलंकित पक्ष को सबसे अच्छे ढंग से अपने उपन्यासों में जगह दी है वह है यहाँ कदम–कदम पर व्याप्त 'भ्रष्टाचार'। इसका प्रमुख कारण है कि शुक्ल जी स्वयं लंबे समय तक उत्तर प्रदेश की राजकीय प्रशासनिक सेवा और बाद में भारतीय प्रशासनिक सेवा में कार्यरत थे। अतः स्वाभाविक रूप से इन्होने अपने उपन्यासों में इस नौकरशाही वर्ग में फैली भ्रष्टाचार की व्यवस्था को सर्वाधिक प्रामाणिकता और वास्तविकता के साथ पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है। दरअसल 'नौकरशाही' शासन–प्रणाली में शासन–संबंधी महत्त्वपूर्ण कार्य–व्यापार असैनिक या प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा किए जाते हैं। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में 'नौकरशाही' अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।इसको परिभाषित करते हुए कहा गया है– "यह तकनीकि पक्ष से शिक्षित उन व्यक्तियों की एक पेशेवर श्रेणी है जो व्यक्ति क्रमवार संगठित है और निष्पक्ष रूप में राज्य की सेवा करते हैं"। चूँकि वर्तमान में राजनीति के जाल से सम्पूर्ण शासन–व्यवस्था आच्छादित है इसलिए नौकरशाही पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है इसीलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि अब नौकरशाही का भी राजनीतिकरण हो गया है। इसका प्रतिफल क्या मिला? वह यह हुआ कि राजनीतिक संरक्षण का इंजन लगाकर भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की रेल भ्रष्टाचार की पटरी पर सरपट दौड़ती जा रही है।यह रेल भ्रष्टाचार के जिन स्टेशनों से नियमित गुजर रही है उनमें से कुछ स्टेशन हमें श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में भी मिलते हैं जिससे भारतीय प्रशासन की भ्रष्ट नौकरशाही व्यवस्था की पोल हमारे सामने खुल जाती है। राग दरबारी उपन्यास में 'सनीचर'(मंगल) के गाँव की प्रधानी जीतने पर उच्च आदर्श तथा समाज के निर्माण में महती भूमिका निभाने वाले शिक्षक पद पर आसीन प्रधानाचार्य ही स्वयं उसे प्रधान पद की हैसियत बताते हुए भ्रष्टाचार के लिए उकसाते हैं– "भारी ओहदा है। पूरे गाँव की जायदाद का मालिक चाहे तो एकदिन में लाखों का वारा–न्यारा कर दे। मुकामी हाकिम है। चाहे तो सारे गाँव को 107 में चालान करके बंद कर दें"। स्पष्ट है कि प्राचार्य जैसा पढ़ा–लिखा शिक्षित व्यक्ति भी केवल अपनी शक्ति और ओहदे के दुरुपयोग की शिक्षा सनीचर जैसे कम शिक्षित किन्तु प्रधान पद प्राप्त व्यक्ति को दे रहा है और कहीं–न–कहीं उसे भ्रष्टाचार में लिप्त होने के लिए प्रेरित भी कर रहा है। हम देखते हैं कि शिवपालगंज गाँव में लागू होने वाली कोई भी ऐसी विकास–योजना नहीं है जिसमें भ्रष्टाचार न हुआ हो या न हो रहा हो।इसके एकमात्र कारण वैद्यजी थे। यही वजह है कि वैद्यजी अपने संरक्षण में कई लोगों को पालते हैं जिससे उनका पद, ओहदा और गाँव में सर्वोच्च स्थान अक्षुण्ण बना रहे।यह बात बिलकुल सच है कि सत्ता प्राप्ति के बाद उसको सुरक्षित रखने के लिए कुटिल राजनीतिज्ञ अपने आस–पास चारों ओर मजबूत किलेबंदी का बंदोबस्त कर लेते हैं। यह अभेद्य किलेबंदी शासन–प्रशासन, नौकरशाह और कभी–कभी पेशेवर गुंडों–माफियाओं को सम्मिलित करके की जाती है।वर्तमान राजीनीति के चेहरे को रुप्पन कुछ इस तरह से व्यक्त करते हुए रंगनाथ से कहता है– "देखो दादा यह तो पॉलिटिक्स है। इसमें बड़ा ही कमीनापन चलता है"। शुक्ल जी का यह उपन्यास केवल शिवपालगंज जैसे किसी एक गाँव की कहानी बयां नहीं करता बल्कि इसके माध्यम से भारत के लगभग सभी गाँवों में फैली हुई अराजकता और वास्तविकता की तस्वीर हमारे सामने आती है। शिवपालगंज गाँव में एक या दो ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण व्यवस्था ही भ्रष्टाचार के अधीन दिखती है। राग दरबारी में ही 'लंगड़' नामक चरित्र के माध्यम से शिवपालगंज की प्रशासनिक व्यवस्था में चलने वाली रिश्वतखोरी का नमूना देखकर वास्तव में आपको इस देश में किसी भी सरकारी दफ्तर में होने वाली रिश्वतख़ोरी याद आ जाएगी– "इसे तहसील से एक दस्तावेज़ की नकल लेनी है। इसने कसम खाई है कि मैं रिश्वत न दूँगा और कायदे से ही नकल लूँगा, उधर नकल बाबू ने कसम खाई है कि मैं रिश्वत न लूँगा और कायदे से ही नकल दूँगा; इसी की लड़ाई चल रही है"। कथानक के अंत तक लंगड़ को नकल नहीं मिलती क्योंकि सच तो यही है कि सरकारी कार्यालयों में 'कायदे से काम होने' का मतलब है कि 'काम न होना' या 'काम को लंबे समय तक लटकाया जाना'। एक बार कोऑपरेटिव यूनियन में गबन होती है तो इस गबन के लिए वैद्यजी प्रतिक्रिया देते हुए कहते हैं– "कोऑपरेटिव में गबन हो गया तो कौन सी बड़ी बात हो गई है? कौन सी यूनियन है जिसमें ऐसा नहीं हुआ हो"। वैद्यजी द्वारा बड़ी सहजता से कही गयी यह बात कहीं–न–कहीं संकेत करती है कि देश में यूनियनों का निर्माण गबन करने के लिए ही होता है।

एक अन्य उपन्यास पहला पड़ाव का बेरोज़गार पात्र संतोष कुमार पढ़ा–लिखा होने के बाद भी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के लौहजाल में फँसे रहने के लिए विवश था।उसकी इस विवशता को उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों में 'डेली पैसेंजरों' के रूप में चित्रित किया गया है। रिश्वतख़ोरी को व्यक्त करते हुए सत्ते कहता है– "सबको बी.ए., एम.ए. करना था, फिर आईएएस के इम्तिहान से शुरुआत करके बाद में घूस देकर ग्रामीण विकास

बैंक की चपरासीगिरी या बहुत हुआ तो निर्बल वर्ग विकास निगम में लेखा लिपिक की कुर्सी पर बैठना था"। सत्ते की हताशा और विवशता यह स्पष्ट करती है कि कि नौकरी पाने के लिए इस देश में रिश्वत देना अनिवार्य हो गया है अब शैक्षणिक योग्यता की अहमियत रिश्वत की तुलना में कम होती जा रही है। जबकि सच्चाई यह है कि रिश्वत देकर पायी गयी नौकरी के प्रति लोगों में कभी कर्तव्य के प्रति निष्ठा या समर्पण का भाव नहीं पैदा हो सकता। पद–प्राप्ति के बाद ऐसे लोग अनिवार्य रूप से घूसख़ोरी को ही बढ़ावा देते हैं और इसी तरह सम्पूर्ण व्यवस्था ही इसका शिकार हो जाती है जिसका खामियाज़ा बेरोज़गार साधारण जनता को भुगतना पड़ता है।

पहला पड़ाव के प्रमुख पात्र 'सत्ते' के माध्यम से शुक्ल जी की निगाह पूरे देश में फैली बेरोजगारी की समस्या पर गयी है क्योंकि इस समय अशिक्षित लोगों की बेरोजगारी से अधिक भयावह और संकटपूर्ण स्थिति देश में शिक्षित लोगों के बेरोजगारी की है। हर साल लाखों–करोड़ो की संख्या में इंजीनियरिंग, मेडिकल, एमबीए, कानून और शिक्षक पात्रता आदि की डिग्री और योग्यता रखने वाले युवा देश में रोजगार के लिए दर–दर भटकने को मजबूर हैं। गौरतलब है कि शिक्षित बेरोजगारी अशिक्षित बेरोजगारी से कहीं ज्यादा हानिकारक है क्योंकि यदि देश का पढ़ा–लिखा शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग ही क्षुधा की आग से तड़पता रहेगा तो देश के विकास में अपना योगदान कभी नहीं दे सकता और बिना इस वर्ग के सहयोग से देश के विकास की कल्पना भी असंभव है। जीवन में बेरोजगारी की समस्या केवल आर्थिक पहलू पर ही नहीं अपितु किसी भी व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार पर भी प्रभाव डालती है। काम करने योग्य कुशल और सक्षम लोग यदि बेरोजगारी की अवस्था में लंबे समय तक रहते हैं तो उनके अंदर कुंठा आ जाती है और कुछ समय बाद यही कुंठा उन्हें अवसादग्रस्त कर देती है जिसकी परिणति कभी–कभी आत्महत्या या ज़्यादातर किसी अनैतिक–असामाजिक अराजकतापूर्ण कार्यों के रूप में होती है। ऐसे कृत्यों का परिणाम यह होता है कि धीरे–धीरे सामाजिक व्यवस्था विघटित होने लगती है और कुछ समय के बाद जब समाज में इन असामाजिक–अराजकतापूर्ण गतिविधियों का बाहुल्य हो जाता है तब देश की सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्था चरमराने लगती है इसलिए जरूरी है कि समय रहते इन परिस्थितियों को पैदा होने से रोका जाए और इसके लिए जो भी अनिवार्य कदम हैं वो सरकारों द्वारा उठाएँ जाएँ।

समाहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण तथा नगरीय परिवेश में फैली आर्थिक समस्याओं को बखूबी अंकित किया है। अर्थाभाव के कारण एक तरफ जहाँ निम्नवर्ग व निम्न–मध्यम वर्गीय समाज के लोग सामान्य जीवन–यापन तक कर पाने में अक्षम हैं वहीं दूसरी ओर समाज में परमेश्वर जी, इंजीनियर, कुँवर जयंती प्रसाद जैसे अर्थलिप्सा से ग्रस्त पूंजीपति उच्च वर्ग के लोग अधिक से अधिक पैसा कमाने के लिए गरीब मजदूर–किसानों का दिन–रात शोषण करने से बाज नहीं आते। इसका नतीजा है कि इस अर्थकेंद्रित पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में अमीर दिनोंदिन और अधिक अमीर हो रहा और गरीब और अधिक गरीब। निर्धनता किसी भी सभ्य विकासशील समाज के लिए कोढ़ व अभिशाप है इसलिए समाज की उन्नति–प्रगति के लिए आवश्यक है कि निर्धनता के इस दुष्चक्र को तोड़ा जाए। हालाँकि देश में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की तरफ से स्वतन्त्रता–प्राप्ति के तुरंत बाद से ही निम्न वर्गों के विकास और उत्थान के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं को प्रारम्भ किया गया किन्तु भ्रष्टाचार में लिपटी राजनीतिक–प्रशासनिक कुव्यवस्था के कारण ऐसी योजनाओं का समुचित लाभ वंचित वर्ग के लोगों तक ठीक से नहीं पहुँच पा रहा है इसीलिए सर्वप्रथम ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था में ही परिवर्तन व सुधार करना जरूरी है।

संदर्भ सूची

1. नया संघर्ष (पत्रिका) मार्च–अप्रैल–1969, पृष्ठ– 86
2. श्रीलाल शुक्ल, सूनी घाटी का सूरज (उपन्यास) पृष्ठ– 01,27,49,201
3. श्रीलाल शुक्ल, अज्ञातवास (उपन्यास) पृष्ठ–41–42
4. एस.एस.नन्दा,लोक–प्रशासन,सं.2005, पृष्ठ–483
5. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी (उपन्यास), पृष्ठ–34,37,104,141
6. श्रीलाल शुक्ल, पहला पड़ाव (उपन्यास), पृष्ठ–10
7. श्रीलाल शुक्ल, राग विराग(उपन्यास), पृष्ठ–110